

पुनस्तं च समानीय प्रपंचेन स मातुलः। गृहे शृङ्खलया पापी स्थापयामास कष्टतः ॥१०॥
पुनर्मा व्रतसच्छैलात्पातयिष्यति मानसे। संविचार्येति संन्यासं गृहीत्वा मुनिसत्तमः ॥११॥
मृत्वा समाधिना स्वर्गं संप्राप्तो निजपुण्यतः। दुर्जनैः पीडितश्चापि सज्जनो नाशुभे रतः ॥१२॥

भवतु दुर्जनको विपदाप्रदो विशदबुद्धिरसौ सुजनः पुनः।

जिनपतेः पदपद्मसुसेवनाद्भवति शर्मपतिर्निजपुण्यतः ॥१३॥

इति कथाकोशे श्रीवृषभसेनाख्यानं समाप्तम्।

८१. जयसेननृपस्याख्यानम्

सारलक्ष्मीप्रदं नत्वा जिनेन्द्रं मुक्तिनायकम्। वक्ष्ये श्रीजयसेनस्य भूपतेः सत्कथानकम् ॥१॥
श्रावस्तीपत्तने राजा जयसेनोभवत्पुरा। वीरसेना महाराज्ञी वीरसेनः सुतस्तयोः ॥२॥
वन्दकः शिवगुप्ताख्यो निन्दकः पललम्पटः। सोपि राज्ञो गुरुर्जातो धिङ्मिथ्यात्वमशर्मकम् ॥३॥
एकदा नगरे तत्र मुनिवृन्दसमन्वितः। समायातो मुनीन्द्रस्तु यत्यादिवृषभः सुधीः ॥४॥

और घर में रहना पड़ा। उसके बाद वह फिर मुनि हो गया। उसका फिर मुनि हो जाना जब धनपति को मालूम हुआ तो किसी बहाने से घर पर लाकर अब की बार उसे उसने लोहे की साँकल से बाँध दिया। मुनि ने यह सोचकर, कि यह मुझे अब की बार फिर व्रतरूपी पर्वत से गिरा देगा, मेरा व्रत भंग कर देगा, संन्यास ले लिया और इसी अवस्था में शरीर छोड़कर वह पुण्य के उदय से स्वर्ग में देव हुआ। दुर्जनों द्वारा सत्पुरुषों को कितने ही कष्ट क्यों न पहुँचाये जायें पर वे कभी पापबन्ध के कारण कामों में नहीं फँसते ॥९-१२॥

दुर्जन पुरुष चाहे कितनी ही तकलीफ क्यों न दें, पर पवित्र बुद्धि के धारी सज्जन महात्मा पुरुष तो जिन भगवान् के चरणों की सेवा-पूजा से होने वाले पुण्य से सुख ही प्राप्त करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥१३॥

८१. जयसेन राजा की कथा

स्वर्गादि सुखों को देने वाले और मोक्षरूपी रमणी के स्वामी श्रीजिन भगवान् को नमस्कार कर जयसेन राजा की सुन्दर कथा लिखी जाती है ॥१॥

श्रावस्ती के राजा जयसेन की रानी वीरसेना के एक पुत्र था। इसका नाम वीरसेन था। वीरसेन बुद्धिमान् और सच्चे हृदय का था, मायाचार-कपट उसे छू तक न गया था ॥२॥

यहाँ एक शिवगुप्त नाम का बुद्ध भिक्षुक रहता था। यह मांसभक्षी और निर्दयी था। ईर्ष्या और द्वेष इसके रोम-रोम में ठसा था मानों वह इनका पुतला था। यह शिवगुप्त राजगुरु था। ऐसे मिथ्यात्व को धिक्कार है जिसके वश हो ऐसे मायावी और द्वेषी भी गुरु हो जाते हैं ॥३॥

एक दिन यतिवृषभ मुनिराज अपने सारे संघ को साथ लिए श्रावस्ती में आए। राजा यद्यपि

तत्पाश्वर्षे पुण्ययोगेन भव्यैः संधैः प्रमण्डितः। धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं भूपोभूच्छ्रावकोत्तमः ॥५॥
 ततस्तेन महाभक्त्या जयसेनेन भूभुजा। जिनेन्द्रभवनैः सर्वं मण्डितं निजमण्डलम् ॥६॥
 तदा स दुर्जनः पापी बुद्धकः शिवगुप्तकः। तद्भूपमारणोपायं चिन्तयंश्चेतसि क्रुधा ॥७॥
 पुरीं च पृथिवीं गत्वा राजानं बौद्धधार्मिकम्। सुमत्याख्यं जगौ सर्वं जयसेनप्रचेष्टितम् ॥८॥
 ततोसौ सुमतिर्लेखं प्रेषयामास तं प्रति। विरूपकं त्वया चक्रे बुद्धधर्मं गृहाण च ॥९॥
 तेनोक्तं जयसेनेन जैनधर्मो जगद्धितः। निश्चयान्निश्चलो मेऽस्ति किमन्यैः पापकारणैः ॥१०॥
 ज्ञातश्रीजैनसद्धर्मः प्राणी किं केन मुह्यति। वायुना महता चापि चाल्यते किं सुराचलः ॥११॥
 रुष्टेन प्रेषितौ तेन सुमत्याख्येन दुर्भटौ। मारणार्थं समागत्य सावस्त्यां तौ च वेगतः ॥१२॥
 स्थित्वा दुष्टौ कियत्कालमवकाशं विना ततः। पश्चादागत्य तं भूपमूचतुर्निजवृत्तकम् ॥१३॥
 सुमतिश्च ततः प्राह पापात्मा सेवकान्प्रति। अस्ति कोपि भटो यस्तु जयसेनं प्रहन्ति च ॥१४॥

बुद्धधर्म का मानने वाला था, तथापि वह और लोगों को मुनिदर्शन के लिए जाते देख आप भी गया। उसने मुनिराज द्वारा धर्म का पवित्र उपदेश चित्त लगाकर सुना। उपदेश उसे बहुत पसन्द आया। उसने मुनिराज से प्रार्थना कर श्रावक के व्रत लिए। जैनधर्म पर अब उसकी दिनों-दिन श्रद्धा बढ़ती ही गई उसने अपने सारे राज्यभर में कोई ऐसा स्थान न रहने दिया जहाँ जिनमन्दिर न हो। प्रत्येक शहर, प्रत्येक गाँव में उसने जिनमन्दिर बनवा दिया। जिनधर्म के लिए राजा का यह प्रयत्न देख शिवगुप्त ईर्ष्या और द्वेष के मारे जल कर खाक हो गया। वह अब राजा को किसी प्रकार मार डालने के प्रयत्न में लगा। और एक दिन खास इसी काम के लिए वह पृथ्वीपुरी गया और वहाँ के बुद्धधर्म के अनुयायी राजा सुमति को उसने जयसेन के जैनधर्म धारण करने और जगह-जगह जिनमन्दिरों के बनवाने आदि का सब हाल कह सुनाया। यह सुन सुमति ने जयसेन को एक पत्र लिखा कि “तुमने बुद्धधर्म छोड़कर जो जैनधर्म ग्रहण किया, यह बहुत बुरा किया है। तुम्हें उचित है कि तुम फिर से बुद्धधर्म स्वीकार कर लो।” इसके उत्तर में जयसेन ने लिख भेजा कि-“मेरा विश्वास है, निश्चय है कि जैनधर्म ही संसार में एक ऐसा सर्वोच्च धर्म है जो जीवमात्र का हित करने वाला है। जिस धर्म में जीवों का मांस खाया जाता है या जिनमें धर्म के नाम पर हिंसा वगैरह महापाप बड़ी खुशी के साथ किए जाते हैं वे धर्म नहीं हो सकते। धर्म का अर्थ है जो संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में रक्खें, सो यह बात सिवा जैनधर्म के और धर्मों में नहीं है। इसलिए इसे छोड़कर और सब अशुभ बन्ध के कारण है।” सच है, जिसने जैनधर्म का सच्चा स्वरूप जान लिया वह क्या फिर किसी से डिगाया जा सकता है? नहीं। प्रचण्ड हवा भी क्यों न चले पर क्या वह मेरु को हिला देगी? नहीं। जयसेन के इस प्रकार विश्वास को देख सुमति को बड़ा गुस्सा आया। तब उसने दो आदमियों को इसलिए श्रावस्ती में भेजा कि वे जयसेन की हत्या कर आवें। वे दोनों आकर कुछ समय तक श्रावस्ती में ठहरे और जयसेन के मार डालने की खोज में लगे रहे, पर उन्हें ऐसा मौका ही न मिल

तन्निशम्य हिमाराख्यो राजपुत्रो दुराशयः। अहं तं मारयाम्युच्चै-रित्युक्त्वा पापपण्डितः ॥१५॥
 सावस्तीनगरीं गत्वा यत्यादिवृषभस्य सः। मुनेः पाश्वे प्रपंचेन मुनि-भूत्वा कुधीः स्थितः ॥१६॥
 एकदा जयसेनोसौ राजा सद्धर्मवत्सलः। जिनालये मुनिं नत्वा धृत्वा लोकं बहिः पुनः ॥१७॥
 पादमूले मुनेः स्थित्वा कृत्वा किञ्चित्प्रजल्पनम्। यावत्सुधीर्नमस्कारं गमनाय करोति च ॥१८॥
 बौद्धो हिमारकः सोपि हत्वा तं जयसेनकम्। नष्टः शीघ्रं महानिन्द्यो लोके बुद्धाश्रितो जनः ॥१९॥
 तमालोक्य मुनिः सोपि यत्यादिवृषभः सुधीः। दर्शनोडाहनाशाय लिखित्वा भित्तिभागके ॥२०॥
 नृपो हिमारकेणैव मारितः पापकर्मणा। इति स्वयं विदार्योच्चैरसिधेनुकयोदरम् ॥२१॥
 संन्यासं च समादाय निश्चलो मेरुवत्तराम्। मृत्वा स्वर्गालयं प्राप्य देवो जातो गुणोज्ज्वलः ॥२२॥
 वीरसेनकुमारो यो जयसेनसुतस्तदा। दृष्ट्वा तौ मरणं प्राप्तौ भित्तौ वीक्ष्याक्षराणि च ॥२३॥

पाया जो वे जयसेन को मार सकें। तब लाचार हो वे वापस पृथ्वीपुरी लौट आए और सब हाल उन्होंने राजा से कह सुनाया। इससे सुमति का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने तब अपने सब नौकरों को इकट्ठा कर कहा-क्या कोई मेरे आदमियों में ऐसा भी हिम्मत बहादुर है जो श्रावस्ती जाकर किसी तरह जयसेन को मार आवे। उनमें से एक हिमारक नाम के दुष्ट ने कहा-हाँ महाराज, मैं इस काम को कर सकता हूँ। आप मुझे आज्ञा दें। इसके बाद ही वह राजाज्ञा पाकर श्रावस्ती आया और यतिवृषभ मुनिराज के पास मायाचार से जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥४-१६॥

एक दिन जयसेन मुनिराज के दर्शन करने को आया और अपने नौकर-चाकरों को मन्दिर के बाहर ठहरा कर आप मन्दिर में गया। मुनि को नमस्कार कर वह कुछ धर्म-सम्बन्धी बातचीत की। इसके बाद जब वह चलने के पहले मुनिराज को ढोक देने के लिए झुका कि इतने में वह दुष्ट हिमारक जयसेन को मार कर भाग गया। सच है-बुद्ध लोग बड़े ही दुष्ट हुआ करते हैं। यह देख मुनि यतिवृषभ को बड़ी चिन्ता हुई उन्होंने सोचा-कहीं सारे संघ पर विपत्ति न आए, इसलिए पास ही की भीत पर उन्होंने यह लिखकर कि “दर्शन या धर्म की डाह के वश होकर ऐसा काम किया गया है।” छुरी से अपना पेट चीर लिया और स्थिरता से संन्यास द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वे स्वर्ग गए ॥१७-२२॥

वीरसेन को जब अपने पिता की मृत्यु का हाल मालूम हुआ तो वह उसी समय दौड़ा हुआ मन्दिर आया। उसे इस प्रकार दिन-दहाड़े किसी साधारण आदमी की नहीं किन्तु खास राजा साहब की हत्या हो जाने और हत्याकारी का कुछ पता न चलने का बड़ा ही आश्चर्य हुआ और जब उसने अपने पिता के पास मुनि को भी मरा पाया तब तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना ही न रहा। वह बड़े विचार में पड़ गया। वे हत्याएँ क्यों हुई? और कैसे हुई? इसका कारण कुछ भी उसकी समझ में न आया। उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं इन मुनि ने तो यह काम न किया हो? पर दूसरे ही क्षण में उसने सोचा कि ऐसा नहीं हो सकता। इनका और पिताजी का कोई वैर-विरोध नहीं, लेना-

प्रशंसां सुतरां कृत्वा मुनीन्द्रस्य विचक्षणः। धर्मे श्रीमज्जिनेन्द्रोक्ते संजातो तीव्रनिश्चलः ॥२४॥
 दुष्टात्मा कुरुते दोषं धर्मे श्रीमज्जिनेशिनाम्। स स्वभावेन निर्दोषो निरभ्रो भास्करो यथा ॥२५॥
 यः श्रीदेवनिकायभूपतिशतैर्नागेन्द्रसत्त्वेचरैः पूज्यो भक्तिभरेण शर्मनिलयो धर्मो जिनेन्द्रोदितः।
 नाना दुःखविनाशको भवहरः स्वर्गापवर्गप्रदः स श्रीमान्भवतां जगत्त्रयहितो दद्याच्छुभं मङ्गलम् ॥२६॥

इति कथाकोशे जयसेननृपस्याख्यानं समाप्तम्।

८२. शकटालमुनेराख्यानम्

नत्वा पादद्वयं जैनं शर्मदं त्रिजगद्धितम्। ब्रुवेऽहं शकटालस्य मुनेर्वृत्तं बुधैर्मतम् ॥१॥
 पुरे पाटलिपुत्रेऽभूद्राजा नन्दोतिभद्रधीः। मंत्री श्रीशकटालाख्यो जैनधर्मरतस्तराम् ॥२॥

देना नहीं, फिर वे क्यों ऐसा करने चले? और पिताजी तो इनके इतने बड़े भक्त थे और न केवल यही बात थी कि पिताजी ही इनके भक्त हों, ये साधु भी तो उनसे बड़ा प्रेम करते थे; घण्टों तक उनके साथ इनकी धर्मचर्चा हुआ करती थी। फिर इस सन्देह को जगह नहीं रहती कि एक निस्पृह और शान्त योगी यह अनर्थ किया जा सके। तब हुआ क्या? बेचारा वीरसेन बड़ी कठिन समस्या में फँसा। वह इस प्रकार चिन्तातुर हो कुछ सोच-विचार कर ही रहा था कि उसकी नजर सामने की भीत पर जा पड़ी। उस पर यह लिखा हुआ, कि “दर्शन या धर्म की डाह के वश होकर ऐसा हुआ है” देखते ही उसकी समझ में उस समय सब बातें बराबर आ गईं उसके मन को अब रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया। उसकी अब मुनिराज पर अत्यन्त श्रद्धा हो गई। उसने मुनिराज के धैर्य और सहनपने की बड़ी प्रशंसा की। जैनधर्म के विषय में उसका पूरा-पूरा विश्वास हो गया। जिनका दुष्ट स्वभाव है, जिनसे दूसरों के धर्म का अभ्युदय-उन्नति नहीं सही जाती ऐसे लोग जिनधर्म सरीखे पवित्र धर्म पर चाहे कितना ही दोष क्यों न लगावें, पर जिनधर्म तो बादलों से न ढके हुए सूरज की तरह सदा ही निर्दोष रहता है ॥२३-२५॥

जिस धर्म को चारों प्रकार के देव, विद्याधर, चक्रवर्ती, राजा-महाराजा आदि सभी महापुरुष भक्ति से पूजते-मानते हैं, जो संसार के दुःखों का नाश कर स्वर्ग या मोक्ष का देने वाला हैं, सुख का स्थान है, संसार के जीव मात्र का हित करने वाला है और जिसका उपदेश सर्वज्ञ भगवान् ने किया है और इसीलिए सबसे अधिक प्रमाण या विश्वास करने योग्य है, वह धर्म-वह आत्मा की एक खास शक्ति मुझे प्राप्त होकर मोक्ष का सुख दे ॥२६॥

८२. शकटाल मुनि की कथा

सुख के देने वाले संसार का हित करने वाले जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को नमस्कार कर शकटाल मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा नन्द के दो मंत्री थे। एक शकटाल और दूसरा वररुचि। शकटाल